# शिवभक्त महर्षि दुर्वासा

महर्षि दुर्वासा अत्रिमुनि के पुत्ररूप में भगवान् शंकर के अंश से उत्पन्न हुए थे। अतः ये रुद्रावतार नाम से भी प्रसिद्ध हैं। अपने परमाराध्य भगवान् शंकर में इनकी विशेष भक्ति थी। ये भस्म एवं रुद्राक्ष धारण किया करते थे। इनका स्वभाव अत्यन्त उग्र था। यद्यपि उग्र स्वभाव के कारण इनके शाप से सभी भयभीत रहते थे तथापि इनका क्रोध भी प्राणियों के परम कल्याण के लिये ही होता रहा है।

एक समय महर्षि दुर्वासा समस्त भूमण्डल का भ्रमण करते हुए पितृलोक में जा पहुँचे। वे सर्वाङ्ग में भस्म रमाये एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। हृदय में पराम्बा भगवती पार्वती का ध्यान और मुख से–'जय पार्वती हर' का उच्चारण करते हुए कमण्डलु तथा त्रिशूल लिये दुर्वासा मुनि ने वहाँ अपने पितरों का दर्शन किया। इसी समय उनके कानों में करुण–क्रन्दन सुनायी पड़ा। वे पापियों के हाहाकारमय भीषण रुदन को सुनकर कुम्भीपाक, रौरव नरक आदि स्थानों को देखने के लिये दौड़ पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने वहाँ के अधिकारियों से पूछा–'रक्षको! यह करुण–क्रन्दन किनका है? ये इतनी यातना क्यों सह रहे हैं?' उन्होंने उत्तर दिया– 'मुने! यह संयमनीपुरी का कुम्भीपाक नामक नरक है। यहाँ वे ही लोग आकर कष्ट भोगते हैं, जो शिव, विष्णु, देवी, सूर्य तथा गणेश के निन्दक हैं और जो वेद–पुराण की निन्दा करते हैं, ब्राह्मणों के द्रोही हैं और माता, पिता, गुरु तथा श्रेष्ठ जनों का अनादर करते हैं, जो धर्म के दूषक हैं, वे पतितजन यहाँ घोर कष्ट पाते हैं। उन्हीं पतितों का यह महाघोर दारुण शब्द आपको सुनायी दे रहा है।'

यह सुनकर दुर्वासा ऋषि बहुत दुःखी हुए और दुःखियों को देखने के लिये वे उस कुण्ड के पास गये। कुण्ड के समीप जाकर ज्यों ही वे सिर नीचा करके देखने लगे त्यों ही वह कुण्ड स्वर्ग के समान सुन्दर हो गया। वहाँ के पापी जीव एकाएक प्रसन्न हो उठे और दुःखों से मुक्त होकर गद्गदस्वर से मधुर भाषण करने लगे। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि होने लगी और त्रिविध समीर चलने लगी। वसन्त ऋतु के समान उस सुखदायी समय ने यमदूतों को भी विस्मय में डाल दिया। स्वयं मुनि भी यह आश्चर्य देखकर बड़े सोच में पड़ गये। चकित होकर यमदूतों ने धर्मराज के निकट जाकर इस स्थिति–परिवर्तन की सूचना दी और कहा–'महाभाग! बड़े आश्चर्य की बात है कि सभी पापियों को इस समय अपार आनन्द हो गया है, किसी को किसी प्रकार की यम–यातना रह ही नहीं गयी। विभो! यह क्या बात है?' दूतों की यह बात सुनते ही धर्मराज स्वयं वहाँ गये और वहाँ का दृश्य देखकर वे भी बहुत चकित हुए। उन्होंने सभी देवताओं को बुलाकर इसका कारण पूछा, परंतु किसी को इसका मूल कारण नहीं मालूम हो सका। जब किसी प्रकार इसका पता न चला, तब ब्रह्मा और विष्णु की

सहायता से धर्मराज स्वयम्भू भगवान् शंकर के पास गये। पार्वती के साथ विराजमान भगवान् शंकर का दर्शनकर वे स्तुति-प्रार्थना करते हुए कहने लगे-

'हे देवदेव! कुम्भीपाक का कुण्ड एकाएक स्वर्ग के समान हो गया, इसका क्या कारण है? प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, अतः आपकी सेवा में हम आये हैं। हम लोगों के संदेह को आप दूर करने की कृपा करें'। सर्वान्तर्यामी भगवान् ने गम्भीर स्वर से हँसते हुए कहा-'देवगणों! इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है, यह विभूति(भस्म) का ही माहात्म्य है। जिस समय मेरे परम भक्त दुर्वासा कुम्भीपाक नरक को देखने गये थे, उस समय वायु के वेग से उनके ललाट से भस्म के कुछ कण उस कुण्ड में गिर पड़े थे। इसी कारण वह नरक स्वर्ग के समान हो गया है। और अब वह स्वर्गीय 'पितृतीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध होगा'।[1]

भगवान् शंकर की बात सुनकर धर्मराजसहित सभी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने उस कुण्ड के समीप शिवलिङ्ग तथा देवी पार्वती की स्थापना की और वहाँ के पापियों को मुक्त कर दिया। तभी से पितृलोक में उस मूर्ति के दर्शन-पूजन करके पितृलोग शिवधाम(मोक्ष) प्राप्त करने लगे। यह चमत्कार परम शैव रुद्रावतार महर्षि दुर्वासा की शिवभक्ति तथा उनके भाल पर विराजमान शिवविभूति का ही था।

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में दुर्वासा की शिवभक्ति संबंधी कथा इस प्रकार है। एक समय दुर्वासाजी शंकर के आनंदवन(काशी) में आये। यहाँ अनेक प्रकार के मन्दिरों से सुशोभित भगवान् शंकर का क्रीडास्थान, बहुत से कुण्ड और तालाब देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत से श्रेष्ठ शिवभक्त सब अंगों में विभूति लगाये, मस्तक पर जटा बढ़ाये, कौपीनमात्र पहने महादेवजी के ध्यान में तत्पर थे। उनका दर्शन करके दुर्वासा मुनि को बड़ा हर्ष हुआ और वे मन ही मन कहने लगे 'यह परम कल्याण का स्थान है, ऐसा स्थान स्वर्गलोक में भी कहाँ है'। इस प्रकार उस पुरी की प्रशंसा करके दुर्वासाजी की चित्तवृत्ति शान्त हुई। फिर वे वहाँ दीर्घकालतक भारी तपस्या में लगे रहे, परन्तु जब उसका कोई फल नहीं दिखायी दिया, तब उनके क्रोध की सीमा नहीं रही। वे कहने लगे 'मुझको धिक्कार है, मेरे कठोर तप को भी धिक्कार है और सबको ठगनेवाले इस शिवक्षेत्र को भी धिक्कार

---

1. **कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसम्मतः।।**
**आवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदा वायुवशाद्धरे।**
**भालेभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः।।**
**तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम्।**
**इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम्।।**
**भविष्यति न संदेहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत्।** (देवीभा. 11/15/64-67)

है। अब मैं ऐसा करूँ जिससे यहाँ किसी की मुक्ति न हो।' ऐसा विचार कर जब वे काशी को शाप देने के लिये उद्यत हुए, तब भगवान् शिव जोर-जोर से हँसने लगे। तत्काल ही वहाँ एक शिवलिंग प्रकट हो गया, जो 'प्रहासितेश्वर' नाम से विख्यात हुआ। उससे साक्षात् भगवान् शंकर दुर्वासा के शाप से पुरी की रक्षा करने के लिये प्रकट हुए और इस प्रकार बोले-'महाक्रोधी तापस! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

शाप देने के लिये जिनका हाथ उठ चुका था, वे दुर्वासा मुनि भगवान् शंकर का करुणामय वचन सुनकर लज्जित हो गये और बोले-तीनों लोकों को अभय देनेवाली इस काशीपुरी को शाप देने के लिये उद्यत होनेवाले मुझको धिक्कार है। जो बुद्धिमान् काशीपुरी की स्तुति करता है, जो काशी को हृदय में धारण करता है, उसने बड़ी भारी तपस्या की है। 'काशी' यह दो अक्षरों का नाम जिसकी जिह्वा के अग्रभाग पर स्थित है, उसे कभी गर्भ में नहीं आना पड़ता। जो 'काशी' इस दो अक्षर के मन्त्र का प्रतिदिन प्रातःकाल जप करता है, वह इहलोक और परलोक दोनों को जीतकर लोकातीत पद को प्राप्त होता है।

तदनन्तर भगवान् शिव बोले-अनसूयानन्दन! इस समय काशी की स्तुति के पुण्य से तुम्हें जैसा उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है, वैसा पहले तपस्या से भी नहीं प्राप्त हुआ था। काशी की स्तुति की लालसा रखनेवाला मनुष्य मुझे जैसा अतिशय प्रिय प्रतीत होता है, वैसा प्रिय यज्ञ की दीक्षा लेकर निरन्तर मेरा यजन करनेवाला पुरुष भी नहीं लगता।

यह सुनकर दुर्वासाजी ने भगवान् शिव का स्तवन किया और प्रसन्न होकर वर माँगते हुए कहा-देवदेव! जगन्नाथ! करुणाकर! यहाँ प्रकट हुआ यह लिंग 'कामद' नाम से प्रसिद्ध होवे और यह तड़ाग 'कामकुण्ड' कहलाये।

महादेवजी ने कहा-मुने! 'एवमस्तु' तुमने जो दुर्वासेश्वर लिंग की स्थापना की है, वही मनुष्यों की कामना पूर्ण करने के कारण कामेश्वर नाम से विख्यात होगा। ऐसा वरदान देकर भगवान् शिव उसी लिंग में विलीन हो गये। उस शिवलिंग की आराधना से दुर्वासा ऋषि ने सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लीं।

स्कंदपुराण की एक दूसरी कथा, जो आवन्त्यखण्ड के रेवाखण्ड में पायी जाती है, के अनुसार एक समय दुर्वासा मुनि सब तीर्थों में घूम रहे थे। घूमते-घूमते वे पितरों के हित की कामना से पितृतीर्थ गयाजी में गये। वहाँ स्नान करके महादेवजी तथा ब्रह्माजी की पूजा करने के पश्चात् उन्होंने कुश और तिलयुक्त जलांजलि तथा पिण्ड पितरों के लिये अर्पण किये। पिण्डदान करके दुर्वासाजी ने मुनियों से कहा-'मुनीश्वरो! मैंने सुना था कि इस तीर्थ में पितर लोग उपस्थित होकर अपने हाथ से पिण्ड ग्रहण करते हैं, वह बात आज मैं नहीं देखता। अतः मेरी तो तीर्थयात्रा व्यर्थ हो गयी।'

मुनि बोले-अमावस्या को यहाँ दिया हुआ पिण्डदान पितर लोग अपने हाथ में लेते हैं, अतः

आप अमावस्यातक प्रतीक्षा कीजिये।

दुर्वासा ने कहा–अब न तो यहाँ पिण्ड दूँगा और न स्नान एवं दान ही करूँगा।

तदनन्तर वे ऋषियों के साथ कमण्डलु हाथ में लेकर ॐकारतीर्थ और नर्मदा के दर्शन के लिये अमरकण्टक पर्वत पर आये। वहाँ उन्होंने ॐकारेश्वर की पूजा करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

दुर्वासा बोले–कालस्वरूप महादेवजी को नमस्कार है। त्रिमूर्तिधारी शिव को नमस्कार है। अव्यक्त और व्यक्तस्वरूप अनन्तानन्तगामी भगवान् शंकर को नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनके स्वरूप हैं, उन सर्वज्ञ शिव को नमस्कार है। भवोद्भव! जगन्नाथ! उमाकान्त! आपको नमस्कार है। कल्याणकारी सुखदाता भव को नमस्कार है। मंगलकारी शंकर को नमस्कार है। तीन नेत्रोंवाले आपको नमस्कार है। अर्धचन्द्रधारी, श्रीकण्ठ और नीलकण्ठ को नमस्कार है। सर्पों का आभूषण धारण करनेवाले त्रिशूलधारी रुद्र को नमस्कार है। पिनाक धनुष धारण करनेवाले महादेव को नमस्कार है। प्रभो! आप शर्व, सर्वरूप और चराचर जगत्स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। सुरेश्वर! इस लोक और परलोक में मेरे अपराध को आप क्षमा करें। देवेश! उमापते! आपके समान दूसरा कोई नहीं है।

यह दिव्य स्तुति सुनकर ॐकाररूपधारी भगवान् शिव बोले–महाभाग! तुम वर माँगो।

दुर्वासा ने कहा–देव! यह तीर्थ गया के समान हो जाय।

भगवान् ॐकारेश्वर बोले–तपोधन! मेरे प्रसाद से यह तीर्थ आज से ही गयातुल्य हो जायगा।

इस प्रकार वरदान पाकर ब्रह्मर्षि दुर्वासा अमरकण्टक के पूर्वभाग में मुनियों के साथ रहने लगे।

(उपर्युक्त कथा कल्याण के शिवोपासनांक, देवीभागवत के 11/15 वें अध्याय तथा गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण के संक्षिप्त स्कंदपुराणांक के पृ. 686–687 तथा 783 पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि वह अपने न्यायपूर्वक उपार्जित धन का दसवाँ भाग ईश्वर की प्रसन्नता के लिये किसी सत्कर्म में लगावे।

**न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता।**
**कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे।।**

(स्कन्दमहापु. माहे. केदा. 12/32)